प्रथम संस्करण १०,२००
७ मई, १९८९ ई०
(अक्षय तृतीया)

मूल्य एक रुपया पच्चीस पैसे

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

१	श्री जयचदलालजी पाटनी, गोहाटी	११०१ ००
२	श्री पूनमचदजी सेठी (गोहाटीवाले) दिल्ली	११०१ ००
३	श्री जगनमलजी अजितकुमार जी सेठी, इम्फाल	११०१ ००
४	श्री हीरालालजी माणकचदजी पाटोदी, लोहारदा	११०१ ००
५	श्रीमती भवरीदेवी ध०प० श्री घीसालालजी छावडा, सीकर	१००१ ००
६	श्री नारायणीदेवी ध०प० श्री गुलावचदजी जैन, दिल्ली	५०१ ००
७	श्री उम्मेदमलजी कमलकुमारजी बडजात्या, बम्बई	५०१ ००
८	ब्र० श्री यशपालजी, एम ए बापूनगर, जयपुर	५०१ ००
९	श्री मागीलालजी पदमकुमारजी पहाडिया, लोहारदा	५०१ ००
१०	श्री पूनमचदजी छावडा इन्दौर	२०१ ००
११	श्री सोभागमलजी बोहरा, दूदूवाले, बापूनगर, जयपुर	२०१ ००
१२	श्री जे० लालचदजी, इन्दौर	२०१ ००
१३	श्री मनोहरलालजी काला, इन्दौर	२०१ ००
१४	श्री सागरमल वज (लल्लूजी) बापूनगर, जयपुर	१०१ ००
१५	श्री सजय जैन, लन्दन	१०१ ००
१६	श्री जवाहरलाल जी जैन, फिरोजाबाद	१०१ ००
१७	श्री शान्तीकुमार जी पाटिल, बापूनगर, जयपुर	१०१ ००
१८	श्री किरनभाई, बापूनगर, जयपुर	१०१ ००
१९	श्री पुरुषोत्तमदासजी शास्त्री, गुढ़ाचन्द्रजी	१०१ ००
२०	श्री पूरनचदजी गोदीका, बापूनगर, जयपुर	१०१ ००
२१	श्री प्रेमचद जी सघी, बापूनगर, जयपुर	१०१ ००
२२	श्री राजकुमार जी बडजात्या, बापूनगर, जयपुर	५१ ००
२३	श्री श्रीमती सुशीलादेवी पाटनी, बापूनगर, जयपुर	५१ ००
	कुल	९१२३-००

प्रकाशकीय

डॉ हुकमचद भारिल्ल द्वारा सकलित कुन्दकुन्दशतक और उसके पद्यानुवाद से आज कोई भी कुन्दकुन्द भक्त अपरिचित नही है। मात्र नौ माह के भीतर अकेली हिन्दी भाषा में इसकी एक लाख से अधिक प्रतियाँ छप जाना अपने आप में महान उपलब्धि है। इसके अनुवाद भी अग्रेजी, मराठी एव कन्नड भाषा में छप रहे हैं,'अभी भी इसकी माँग निरन्तर बनी हुई है।

आकाशवाणी के कलाकारों द्वारा 'कुन्दकुन्दशतक पद्यानुवाद' का एक सगीतमय कैसेट भी तैयार कराया गया था, जो तीन माह के अत्यल्प काल मे ही दश हजार की सख्या में घर-घर पहुँच कर प्रतिदिन बज रहा है। अध्यात्मप्रेमी समाज में इसका पाठ भी सामूहिक या व्यक्तिगत रूप में प्रतिदिन हो रहा है।

आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी को जन-जनतक पहुँचाने के इस सफल प्रयोग से प्रभावित होकर ब्र० यशपालजी को तीव्र भावना हुई कि कुन्दकुन्दशतक की शैलीपर एक शुद्धात्मशतक भी बनना चाहिए। उन्होने मुझसे अपनी भावना व्यक्त की। मुझे भी उनका सुझाव ठीक लगा। मैं और वे दोनों मिलकर डॉ० भारिल्ल के पास गये और उनसे शुद्धात्मशतक का सकलन करने का अनुरोध किया, जिसे उन्होंने न केवल स्वीकार ही किया, अपितु अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम में से भी समय निकाल कर अत्यल्प काल मे इस सुन्दरतम कृति को तैयार कर दिया, जिसे आपके करकमलो में समर्पित करते हुए हमें अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा हे।

इस प्रकार की कृतियों की सीमातीत लोकप्रियता देखकर हम इस कृति का प्रथम सस्करण ही १० हजार २०० प्रतियों का छपा रहे हैं। साथ ही इसके पद्यानुवाद को पाकेट साइज में २० हजार २०० पृथक् से छपा रहे हैं। इसप्रकार यह कृति आपके हाथो में एक साथ ही ३० हजार ४०० की सख्या में पहुँच रही है।

आकाशवाणी के कलाकरों द्वारा इसका एक सगीतम केसेट भी तैयार कराया गया है, जो शीघ्र ही आपके हाथों मे पहुँचेगा।

हमें आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि आप इस कृति को कुन्दकुन्द शतक के समान ही अपनायेगे।

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह के अवसर पर हमने इन दोनों अभूतपूर्व कृतियों का समर्पण तो समाज की सेवा मे किया ही है, इनके अतिरिक्त आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन और उनके पचपरमागमों के सार को सक्षेप में प्रस्तुत करने वाली डॉ० भारिल्ल की १५६ पृष्ठ की सरल-सुबोध कृति "आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पच परमागम ' भी हम डेमी साइज में प्रकाशित कर चुके हैं, जिसका ५,२०० का प्रथम सस्करण समाप्त हो चुका है और ५,२०० का ही दूसरा सस्करण भी प्रकाशित हो चुका है।

इसीप्रकार राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच डी के लिए स्वीकृत डॉ० शुद्धात्मप्रभा का शोध-प्रबध "आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार एक समालोचनात्मक अध्ययन" भी प्रकाशित कर चुके हैं। इसका भी ३२०० का प्रथम सस्करण समाप्त हो गया है, २, २०० का दूसरा सस्करण भी निकल चुका है, जो अभी उपलब्ध है।

डॉ० भारिल्ल द्वारा सरल-सुबोध भाषा में किये गये समयसार की मूल गाथाओं के पद्यानुवाद को भी हमने दो माह पूर्व ही १० हजार २०० की सख्या में छपाया है।

जैनपथ प्रदर्शक ने गतवर्ष २६३ पृष्ठो का "आचार्य कुन्दकुन्द विशेषाक" निकाला था, जिसकी सर्वत्र सराहना हुई है, इस वर्ष वह "समयसार विशेषाक" निकाल रहा है। यह विशेषाक भी २५० पृष्ठों से कम का नही होगा।

आचार्य कुन्दकुन्द के पचपरमागमों को भी हमने अत्यल्प मूल्य में निरन्तर उपलब्ध रखा है। कुन्दकुन्द ज्ञानचक्र के माध्यम से लगभग दो लाख का साहित्य तो जन-जन तक पहुँचाया ही है, जैन समाज को निरन्तर जागृत भी रखा है और उन्हें कुन्दकुन्द के जीवन एव साहित्य से परिचित कराया है। गतवर्ष में कहीं न कहीं लगभग प्रत्येक माह में एक सेमिनार का भी आयोजन किया गया, जिसके माध्यम से विद्वानों के विचारों को समाज तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है।

इसप्रकार आचार्य कुन्दकुन्द और उनके व्यक्तित्व व कर्तृत्व को जन-जन तक पहुँचाने के इस महान कार्य में डॉ० भारिल्ल के सहयोग व निर्देशन में हमने जो भी सभव हुआ है, पूरी शक्ति से किया है और आगे भी करने को कृतसकल्प हैं। इस कार्य में समाज का भी हमें भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है और भविष्य में भी उनके सहयोग की कामना करता हूँ।

अन्त में इस पुस्तक की फोटोटाईप सैटिंग का कार्य अल्प समय में पूरा करने के लिए टाइपस्कैन फोटोटाईप सैटर के मालिक श्री राजीव कालरा को धन्यवाद देता हूँ। इसके साथ ही साहित्य प्रकाशन एव प्रचार विभाग के प्रभारी श्री अखिल बसल जिन्होंने सम्पूर्ण मुद्रण व्यवस्था का कार्य सम्पादित करने में सहयोग दिया है,उनका भी आभार मानता हूँ।

अधिकतम लोग आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी का स्वाद लें-इस पवित्र भावना के साथ।

—नेमीचन्द पाटनी

महामत्री, टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

सम्पादकीय

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व विक्रम की प्रथम शताब्दी में कौण्डकुन्दपुर-कर्नाटक में जन्मे जिन-अध्यात्म के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान जिन-आचार्य परम्परा में सर्वोपरि है। दो हजार वर्ष से आजतक लगातार दिगम्बर साधु अपने आपको कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा का कहलाने में गौरव का अनुभव करते रहे हैं।

परवर्ती ग्रन्थकारों ने आपको जिस श्रद्धा के साथ स्मरण किया है, उससे भी यह पता चलता है कि दिगम्बर जिन परम्परा में आपका स्थान बेजोड है।

आचार्य कुन्दकुन्द के उपलब्ध साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थराज समयसार जिन-अध्यात्म का प्रतिष्ठापक अद्वितीय महान शास्त्र है। प्रवचनसार और पचास्तिकाय सग्रह भी जैनदर्शन में प्रतिपादित वस्तुव्यवस्था के विशद विवेचन करने वाले जिनागम के मूल ग्रन्थराज हैं। ये तीनों ही ग्रन्थराज परवर्ती दिगम्बर जैन साहित्य के मूल आधार रहे हैं।

परमाध्यात्मरस से सरावोर नियमसार आचार्य कुन्दकुन्द की एक ऐसी कृति है, जिसे उन्होंने अपने स्वय के दैनिक पाठ के लिए बनाया था। अष्टपाहुड में उनके प्रशासक रूप के दर्शन होते हैं। उसमें उन्होंने शिथिलाचार के विरुद्ध कठोर भाषा में उस परमसत्य का उद्घाटन किया है, जिसके जाने बिना साधकों के भटक जाने के अवसर अधिक थे।

कुन्दकुन्दशतक की सफलता से उत्साहित होकर ब्र० यशपालजी की तीव्र भावना हुई कि कुन्दकुन्दशतक की ही शैली में एक शुद्धात्मशतक भी बनना चाहिए, जिसमें आचार्य कुन्दकुन्द के पचपरमागमों की शुद्धात्मा सम्बधी गाथाएँ सकलित हों। उनकी इस भावना को बल दिया कर्नाटक के सुयोग्य विद्वान एम०बी० पाटील ने और वे शुद्धात्मशतक तैयार कराने के लिए मेरे पीछे पड गए। उनके अनेक अनुरोधों के बावजूद भी जब कुछ नहीं हुआ तो वे श्री नेमीचदजी पाटनी के पास गये और मुझ से अनुरोध करने के लिए उन्हें प्रेरित किया।

जब ब्र० यशपालजी एव श्री नेमीचदजी पाटनी दोनों एक साथ ही मेरे पास आये तो मैं ना न कर सका, पर समयाभाव के कारण कुछ हो नहीं पा रहा था, पर ब्र० यशपालजी को तो मानो धुन ही सवार हो गई थी और वे मुझे प्रतिदिन टोकने लगे, परिणामस्वरूप यह शुद्धात्मशतक आपके हाथ में है। इस तरह इसके निर्माण में ब्र० यशपालजी की प्रेरणा ही प्रवल कारण रही है। उनकी इस प्रवल प्रेरणा से मुझे एकबार फिर आचार्य कुन्दकुन्द के पचपरमागमों को अनेक बार आद्योपान्त गहराई से आलोडन करने का अवसर प्राप्त हुआ, तदर्थ मैं उन्हें जितना भी धन्यवाद दूँ, कम है।

आचार्य कुन्दकुन्द के पंच परमागमों में सकलित इस शुद्धात्मशतक में सर्वाधिक गाथाएँ समयसार की ही हैं, क्योंकि मूलत समयसार ही शुद्धात्मा का प्रतिपादक शास्त्र है।

यहाँ शुद्धात्मा से आशय पर और पर्याय से भिन्न उस त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा से है, जिसमें अपनापन स्थापित होने का नाम सम्यग्दर्शन, जिसे निज जानने का नाम सम्यग्ज्ञान और जिसमें जमने-रमने व जिसका ध्यान करने का नाम सम्यक्चारित्र है।

यहाँ शुद्धात्मा का आशय मोक्षतत्त्व रूप सिद्ध दशा से नही, अपितु पुद्गलादि अजीवों, विकारीभाव रूप आस्रव-बध एव पुण्य-पाप तत्त्वों एव निर्मल पर्यायरूप सवर, निर्जरा व मोक्षतत्त्व से भी भिन्न जीवतत्त्व से है।

यहाँ उस शुद्धता की बात नहीं है, जो प्रकट होनी है, अपितु उस शुद्धता की बात है, जो प्रत्येक आत्मा में त्रिकाल विद्यमान है। यही कारण है कि इसमें सकलित सभी गाथाएँ

परमपारिणामिकभाव रूप उसी त्रिकाल शुद्धता की ओर सकेत करती हैं।

उक्त त्रिकाली शुद्ध आत्मा तक हमारी दृष्टि पहुँचे, तदर्थ यह अत्यन्त आवश्यक है कि पर और पर्याय से भिन्नता वताने वाली भेदविज्ञान मूलक गाथाओ के साथ-साथ परकर्तृत्व का दृढ़ता से निषेध करनेवाली गाथाओं का भी समावेश हो, यही कारण है कि इसमें शुद्धात्मा के स्वरूप की प्रतिपादक एव भेदविज्ञान मूलक गाथाओं के साथ-साथ परकर्तृत्व के निषेध सबधी गाथाएँ भी रखी गई हैं क्योंकि पर में अहबुद्धि, ममत्वबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि एव भोक्तृत्वबुद्धि एकना ही मिथ्यात्व परिणाम है।

नयों का सम्यक् स्वरूप समझे विना ही अपने को आध्यात्मिक मान लेने वाले कुछ लोग यह कहते कही भी मिल जावेंगे कि आज मेरे शरीर को बुखार आ गया है। 'मुझे बुखार आ गया है'— यह कहने में उन्हें मिथ्यात्व नजर आता है, पर 'मेरे शरीर को बुखार आया'—यह कहने में कोई गडबड नहीं लगती, पर नयचक्र का स्वाध्याय करने वाले तो यह अच्छी तरह जानते ही हैं कि शरीर को आत्मा कहना, शरीर को आत्मा का कहना और आत्मा को शरीर की क्रिया का कर्ता-भोक्ता कहना एक ही अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है। यही कारण है कि शरीर से एकत्वबुद्धि, ममत्वबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि एव भोक्तृत्वबुद्धि एक साथ ही छूटती है।

इस तथ्य से अपरिचित लोगों को पर में अहबुद्धि तो मिथ्यात्व लगती है, परन्तु पर में ममत्वबुद्धि , कर्तृत्वबुद्धि व भोक्तृत्वबुद्धि मिथ्यात्व नहीं लगती, अन्यथा वे मुझे बुखार आ गया की जगह मेरे शरीर को बुखार आ गया कहकर अपने को अध्यात्मी नही मानते। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर इसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व सबधी गाथाएँ भी दी गई हैं। इसप्रकार शुद्धात्मा का प्रतिपादक होने के साथ-साथ शुद्धात्मा की उपलब्धि का मार्गदर्शक होनेवाला होने से यह सम्पूर्णत शुद्धात्मशतक ही है।

जो भव्यजन इसमें प्रतिपादित शुद्धात्मा के स्वरूप को समझकर, उसी की अविरल भावना भायेंगे, अन्तर में निरन्तर उसका ही घोलन करेंगे, उन्हें शुद्धात्मा की प्राप्ति अवश्य होगी। - इस विश्वास के साथ मगल कामना करता हूँ कि सभी लोग निजशुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति कर अनन्त सुखी हों।

२ अप्रैल, १९८९ ई०

—(डॉ०) हुकमचद भारिल्ल

[1]शुद्धात्मशतक

(१)

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण ।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स ।।

परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।
शतवार उनको हो नमन निष्कर्म जो परमातमा ।।

जिस देव ने सम्पूर्ण परद्रव्यों को छोडकर ज्ञानमय निज भगवान आत्मा उपलब्ध किया है और कर्मों का नाश किया है, उस देव के लिए बारम्बार नमस्कार हो।

(२)

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं ।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ।।

परद्रव्य मे रत बधे और विरक्त शिवरमणी वरे ।
जिनदेव का उपदेश बध-अबध का सक्षेप मे ।।

परद्रव्य मे रत जीव विविध कर्मों से बधता है और परद्रव्य विरक्त मुक्त होता है, बध और मोक्ष के सम्बन्ध मे जिनेन्द्र भगवान का सक्षेप में यही उपदेश है।

---

१ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा १   २ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा १३

(३)

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि ।।

परद्रव्य से हो दुर्गती निजद्रव्य से होती सुगति ।
यह जानकर रति करो निज मे अर करो पर से विरति ।।

परद्रव्य [३]को अपना जानने, मानने एव उसमे ही रमने से दुर्गति (चतुर्गति परिभ्रमण) होती है और स्वद्रव्य मे अपनापन स्थापित करने से, उसे ही अपना जानने, मानने एव उसमें ही जमने रमने से सुगति (पचमगति – मोक्ष) होती है, ऐसा जानकर परद्रव्य से विराम लेकर स्वद्रव्य मे रति करो।

(४)

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं ।।

नित नियम से निजद्रव्य मे रत श्रमण सम्यकवत हैं ।
सम्यक्त्व परिणत श्रमण ही क्षय करे करमानत हैं ।।

जो श्रमण स्वद्रव्य में रत हैं, रुचिवत हैं, वे नियम से सम्यक्त्व सहित हैं। सम्यक्त्व सहित वे श्रमण दुष्ट अष्ट कर्मो का नाश करते हैं।

तात्पर्य यह है कि अपने आत्मा में अपनापन स्थापित कर अपनी आत्मा मे लीन हो जाने वाले सम्यग्दृष्टी धर्मात्मा श्रमण आठकर्मों का नाश करते हैं, सिद्धदशा को प्राप्त करते हैं।

(५)

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू ।
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं ।।

किन्तु जो परद्रव्यरत वे श्रमण मिथ्यादृष्टी हैं ।
मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से वधे ।।

जो साधु परद्रव्य मे रत है, वह मिथ्यादृष्टी है। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप से परिणत वह श्रमण दुष्ट अष्टकर्मों से वधता है।

---

३ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा १६
४ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा १४
५ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड गाथा १५

(६)

आदसहावादण्ण सच्चित्ताचित्रमिस्सिय हवदि ।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थ सव्वदरिसीहिं ।।

जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एव मिश्र हैं।
उन सर्व द्रव्यो को अरे परद्रव्य जिनवर ने कहा ।।

निज भगवान आत्मा से भिन्न जो भी स्त्री-पुत्रादि व रागादि सचित्त, धन-धान्यादि अचित्त एव सेनादि मिश्र पदार्थ हैं वे सभी परद्रव्य हैं - ऐसा सत्यवादी एव सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

(७)

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवम णाणविग्गह णिच्चं ।
सुद्ध जिणेहिं कहिय अप्पाण हवदि सद्दव्व ।।

दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है।
वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ।।

दुष्ट-अष्टकर्मों से रहित, अनुपम, ज्ञानशरीरी, नित्य, शुद्ध आत्मा को ही जिनेन्द्र भगवान ने स्वद्रव्य कहा है।

(८)

णिच्छयणयस्स एव अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो ।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ।।

निजद्रव्य रत यह आतमा ही योगि चारित्रवत है ।
यह ही बने परमातमा परमार्थनय का कथन यह ।।

निश्चयनय का स्पष्ट कहना है कि जो अपने आत्मा मे लीन हो जाता है, वह स्फुरितचरित्र योगी निर्वाण को प्राप्त करता है।

---

६ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा १७

७ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा १८

८ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड गाथा ८३

(९)

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणतो वि हु पोग्गलकम्म अणेयविहं ।।

परद्रव्य की पर्याय मे उपजे ग्रहे ना परिणमे ।
वहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करे ।।

ज्ञानी जीव अनेक प्रकार से पौद्गलिक कर्मो को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्याय मे परिणमित नही होता, उसे ग्रहण नही करता और उसरूप उत्पन्न नही होता।

(१०)

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणतो वि हु पोग्गलकम्मप्फलमणंतं ।।

परद्रव्य की पर्याय मे उपजे ग्रहे ना परिणमे ।
पुद्गलकरम का नतफल ज्ञानी पुरुष जाना करे ।।

ज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य के अनन्त फल को जानता हुआ भी परमार्थ से परद्रव्य की पर्याय मे परिणमित नही होता, उसे ग्रहण नही करता और उसरूप उत्पन्न नही होता।

(११)

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणतो वि हु सगपरिणामं अणेयविह ।।

परद्रव्य की पर्याय मे उपजे ग्रहे ना परिणमे ।
वहुभाँति निज परिणाम सव ज्ञानी पुरुष जाना करे ।।

ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के अपने परिणामो को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्याय मे परिणमित नही होता, उसे ग्रहण नही करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता।

---

९ समयसार गाथा ७६ १० समयसार गाथा ७८

११ समयसार, गाथा ७७

(१२)

को णाम भणिज्ज बुहो णादु सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणतो अप्पयं सुद्धं ।।

निज आतमा को शुद्ध अर पररूप पर को जानता ।
है कौन बुध जो जगत मे परद्रव्य को अपना कहे ।।

परपदार्थों को पर एव निज शुद्ध आत्मा को निज जानता हुआ ऐसा कौन ज्ञानी पुरुषों होगा जो परपदार्थो को 'यह मेरा है' – ऐसा कहेगा?

तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुषो की परपदार्थों में अहबुद्धि नही होती।

(१३)

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो ।।

आतमा ही आतमा का परीग्रह – यह जानकर ।
'परद्रव्य मेरा है'- बताओ कौन बुध ऐसा कहे? ।।

अपने आत्मा को ही नियम से अपना परिग्रह जानता हुआ कौन ज्ञानी यह कहेगा कि यह परद्रव्य मेरा द्रव्य है? तात्पर्य यह है कि कोई भी ज्ञानी धर्मात्मा परद्रव्य मे अपनापन स्थापित नही करता।

(१४)

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ।।

यदि परीग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे ।
पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नही ।।

यदि परद्रव्य रूप परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवपने को प्राप्त हो जाऊँ, परन्तु मैं तो ज्ञाता ही हूँ, अत परिग्रह मेरा नही है।

---

१२ समयसार गाथा ३००
१३ समयसार, गाथा २०७
१४ समयसार, गाथा २०८

(१५)

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ ।।

छिद जाय या ले जाय कोइ अथवा प्रलय को प्राप्त हो ।
जावे चला चाहे जहाँ पर परीग्रह मेरा नही।।

छिद जावे, भिद जावे अथवा कोई ले जावे, चाहे जहाँ चला जावे, प्रलय ही क्यो न हो जावे मैं उसकी क्यो चिन्ता करूँ, क्योकि निश्चय से वह परिग्रह मेरा नही है।

(१६)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे धर्म को ।
है परीग्रह न धर्म का वह धर्म का ज्ञायक रहे।।

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी धर्म (पुण्य) चाहता नही है, अत वह धर्म का परिग्रही नही है, वह तो धर्म का ज्ञायक ही है।

(१७)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी णेच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे अधर्म को ।
है परिग्रह न अधर्म का वह अधर्म का ज्ञायक रहे।।

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी अधर्म (पाप) को चाहता नही है, अत वह अधर्म का परिग्रही नही है, वह तो अधर्म का ज्ञायक ही है।

---

१५ समयसार गाथा २०९   १६ समयसार गाथा २१०

१७ समयसार गाथा २११

(१८)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे असण ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे असन को ।
है परिग्रह न असन का वह असन का ज्ञायक रहे ।।

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी भोजन को चाहता नही है, अत वह भोजन का परिग्रही नही है, वह तो भोजन का ज्ञायक ही है।

(१९)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे पाणं ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे पेय को ।
है परिग्रह न पेय का वह पेय का ज्ञायक रहे ।।

अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पान (पेय) को चाहता नही है, अत वह पेय का परिग्रही नही है, वह तो पेय का ज्ञायक ही है।

(२०)

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालबो दु सव्वत्थ ।।

इत्यादि विध-विध भाव जो ज्ञानी न चाहे सभी को ।
सर्वत्र ही वह निरालम्बी नियत ज्ञायकभाव है ।।

इत्यादिक अनेक प्रकार के सभी भावो को ज्ञानी चाहता नही है, इसलिए वह नियम से सर्वत्र निरालम्बी ज्ञायकभाव ही है।

---

१८ समयसार, गाथा २१२ १९ समयसार, गाथा २१३
२० समयसार, गाथा २१४

(२१)

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ।।

उदय कर्मो के विविध-विध सूत्र मे जिनवर कहे ।
किन्तु वे मेरे नही मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ।।

जिनेन्द्र भगवान ने कर्मों के उदय का विपाक (फल) अनेक प्रकार का कहा है, किन्तु वे मेरे स्वभाव नही है, मैं तो एक ज्ञायकभाव ही हूँ।

(२२)

पोग्गलकम्मं रागो तस्य विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमेक्को ।।

पुद्गल करम है राग उसके उदय ये परिणाम हैं ।
किन्तु ये मेरे नही मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ।।

राग पुद्गलकर्म है, उसके विपाकरूप उदय ये भाव हैं और ये भाव मेरे नही हैं, क्योकि मैं तो निश्चय से एक ज्ञायकभाव ही हूँ।

(२३)

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिण भणदि पोग्गल दव्वं ।
बद्धमबद्ध च तहा जीवो बहुभाव संजुत्तो ।।

अज्ञानमोहितमती बहुविध भाव से सयुक्त जिय ।
अबद्ध एव बद्ध पुद्गल द्रव्य को अपना कहे ।।

जिनकी मति अज्ञान से मोहित है और जो राग-द्वेष-मोह आदि अनेक भावो से युक्त है – ऐसा जीव कहता है कि ये शरीरादि बद्ध और धन-धान्यादि अबद्ध पुद्गल द्रव्य मेरे हैं।

---

२१ समयसार, गाथा १९८ २२ समयसार गाथा १९९

२३ समयसार गाथा २३

(२४)

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं ।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ।।

सर्वज्ञ ने देखा सदा उपयोग लक्षण जीव यह।
पुद्गलमयी हो किसतरह किसतरह तू अपना कहे? ।।

उसे समझाते हुए आचार्य देव कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान द्वारा देखा गया जो सदा उपयोग लक्षण वाला जीव है, वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो सकता है, जिससे कि तू यह कह सके कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।

(२५)

जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं ।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं ।।

जीवमय पुद्गल तथा पद्गलमयी हो जीव जब ।
ये मेरे पुद्गल द्रव्य हैं–यह कहा जा सकता है तब ।।

यदि जीवद्रव्य पुद्गलव्यरूप हो जाय और पुद्गलद्रव्य जीवरूप हो जाय तो तू कह सकता है कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।

(२६)

एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदय मुणेदव्वो ।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ।।

दूध-पानी की तरह सम्बन्ध इनका जानना ।
उपयोगमय इस जीव के परमार्थ से ये हैं नही ।।

इन वर्णादिक भावो के साथ जीव का सबध दूध और पानी की तरह एक क्षेत्रावगाह रूप सयोग सम्बन्ध है – ऐसा जानना चाहिए। ये सभी भाव जीव के नही हैं, क्योकि जीव मे उनसे उपयोग गुण अधिक हैं।

---

२४ ममयसार गाथा २४ २५ ममयमार गाथा २५

२६ ममयमार, गाथा ५७

(२७)

पंथे मुस्सतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ।।

पथिक लुटते देखकर पथ लुट रहा जग-जन कहे।
पर पथ तो लुटता है नही बस पथिक ही लुटते रहे ।।

जिसप्रकार पथिक को लुटता हुआ देखकर व्यवहारीजन कहते हैं कि यह मार्ग लुटता है, किन्तु परमार्थ से विचार किया जाय तो मार्ग नही लुटता, मार्ग मे जाता हुआ मनुष्य ही लुटता है।

(२८)

तह जीवे कम्माण णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ।।

उस ही तरह रग देखकर जडकर्म अर नोकर्म का ।
जिनवर कहे व्यवहार से यह वर्ण है इस जीव का ।।

उसीप्रकार जीव मे कर्मो और नोकर्मों का वर्ण देखकर जीव का यह वर्ण है — इसप्रकार व्यवहार मे जिनेन्द्रदेव ने कहा।

(२९)

गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ।।

इस तरह ही रस गध तन संस्थान आदिक जीव के।
व्यवहार मे हैं — कहे वे जो जानते परमार्थ को।।

इसी प्रकार निश्चयनय के जानकारो ने गध, रस, स्पर्श, रूप, देह, संस्थान आदि को व्यवहार मे जीव के कहे हैं।

---

२७ समयसार, गाथा ५८ २८ समयसार गाथा ५९
२९ समयसार, गाथा ६०

(३०)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि ।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ।।

वर्णादिमय ही जीव हैं तुम यदी मानो इसतरह ।
तब जीव और अजीव मे अन्तर करोग किसतरह ।।

यदि तुम ऐसा मानोगे कि यह सब वर्णादि भाव जीव ही हैं तो तुम्हारे मत में जीव और अजीव मे कोई अन्तर नही रहता है।

(३१)

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ।।

शुध जीव के रस गध ना अर वर्ण ना स्पर्श ना ।
यह देह ना जडरूप ना सस्थान ना सहनन ना ।।

जीव के वर्ण नही हैं, गध भी नही है, रस भी नही है, स्पर्श भी नही हैं, रूप भी नही है, शरीर भी नही है, सस्थान भी नही है और सहनन भी नही है।

(३२)

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
ण पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ।।

ना राग है ना द्वेष है ना मोह है इस जीव के ।
प्रत्यय नही है कर्म ना नोकर्म ना इस जीव के ।।

इस जीव के राग भी नही है, द्वेष भी नही है, मोह भी नही है, प्रत्यय भी नही है, कर्म भी नही है और नोकर्म भी नही है।

---

३० समयसार, गाथा ६२ ३१ समयसार, गाथा ५०
३२ समयसार, गाथा ५१

(३३)

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि ।।

ना वर्ग है ना वर्गणा अर कोई स्पर्धक नही ।
अर नही है अनुभाग के अध्यात्म के स्थान भी ।।

जीव के वर्ग नही है, वर्गणा नही है, स्पर्धक नही है, अध्यात्मस्थान नही है और अनभागस्थान नही है।

(३४)

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ।।

योग के स्थान नहि अर बध के स्थान ना ।
उदय के स्थान नहि अर मार्गणा स्थान ना ।।

जीव के योगस्थान नही है, वधस्थान नही है, उदयस्थान नही है, और मार्गणास्थान नही है।

(३५)

णो ठिदिबधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ।।

थिति वध के स्थान नहि सक्लेश के स्थान ना ।
सयमलब्धि के स्थान ना सुविशुद्धि के स्थान ना ।।

जीव के स्थितिवधस्थान भी नही है, सक्लेशस्थान भी नही है, विशुद्धिस्थान भी नहीं है, और सयमलब्धिस्थान भी नही हैं।

---

३३ समयसार गाथा ५२

३४ समयसार गाथा ५३

३५ समयसार गाथा ५४

(३६)

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा ।।

जीव के स्थान नहिं गुणथान के स्थान ना ।
क्योकि ये सब भाव पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ।।

इस जीव के जीवस्थान भी नही हैं, और गुणस्थान भी नही है क्योकि ये सब भाव पुद्गलद्रव्य के परिणाम है।

(३७)

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ।।

हैं हेय ये परभाव सब ही क्योकि ये परद्रव्य हैं ।
आदेय अन्त तत्त्व आतम क्योकि वह स्वद्रव्य है ।।

पूर्वोक्त सम्पूर्ण भाव परद्रव्य हैं, परभाव हैं, इसलिए हेय हैं। अतस्तत्त्व आत्मा स्वद्रव्य है, अत उपादेय है।

(३८)

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसठाणं ।।

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है ।
जानो अलिगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ।।

भगवान आत्मा मे न रस है, न रूप है, न गध है और न शब्द है, अत यह आत्मा अव्यक्त है, इन्द्रियग्राह्य नही है। हे भव्यो! किसी भी लिंग से ग्रहण न होनेवाले, चेतना गुणवाले एव अनिर्दिष्ट (न कहे जा सकनेवाले) सस्थान (आकार) वाले इस भगवान आत्मा को जानो।

---

३६ समयसार, गाथा ५५
३७ नियमसार गाथा ५०
३८ पचास्तिकाय, गाथा १२७

(३९)

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि ।।

मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नही ।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नही ।।

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ एव सदा ही ज्ञानदर्शनमय अरूपीतत्त्व हूँ। मुझसे भिन्न अन्य समस्त द्रव्य परमाणु मात्र भी मेरे नही हैं। तात्पर्य यह है कि मैं समस्त परद्रव्यो से भिन्न ज्ञानदर्शनस्वरूपी, अरूपी, एक परमशुद्ध तत्त्व हूँ, अन्य परद्रव्यों से मेरा कोई सम्बन्ध नही है।

(४०)

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति ।।

मोहादि मेरे कुछ नही मैं एक हूँ उपयोगमय ।
है मोह-निर्ममता यही वे कहे जो जाने समय ।।

'मोह मेरा कोई (सम्बन्धी) नही है, मैं तो एक उपयोग ही हूँ' – ऐसा जाननेवाले को एव उनके इसप्रकार के जानने को सिद्धान्त के जानकार मोह से निर्ममत्व जानते हैं, कहते हैं।

(४१)

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणाया बेंति ।।

धर्मादि मेरे कुछ नही मैं एक हूँ उपयोगमय ।
है धर्म-निर्ममता यही वे कहे जो जाने समय ।।

'ये धर्म आदि द्रव्य मेरे कुछ भी नही हैं, मैं तो एक उपयोग ही हूँ' – ऐसा जानने वाले को एव उनके इसप्रकार के जानने को सिद्धान्त के जानकर धर्मादि द्रव्यों के प्रति निर्ममत्व जानते हैं, कहते हैं।

---

३९ समयसार गाथा ३८ ४० समयसार, गाथा ३६
४१ समयसार, गाथा ३७

(४२)

एवं सम्मद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं ।
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो ।।

ज्ञायकस्वाभावी आतमा इसतरह ज्ञानी जानते ।
निजतत्त्व को पहिचान कर कर्मोदयो को छोडते ।।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टी जीव अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभावी जानता है और तत्त्व को जानता हुआ कर्म के विपाकरूप उदय को छोडता है।

(४३)

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य ।
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवलं णाणं ।।

सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी आतमा सिध शुद्ध है ।
यह कहा जिनवर देव ने तुम स्वय केवलज्ञानमय ।।

यह भगवान आत्मा सिद्ध है, शुद्ध है, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है – ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। अत हे आत्मा तू स्वय को केवल ज्ञानस्वरूप ही जान।

(४४)

सत्थं णाणं ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा बेंति ।।

शास्त्र ज्ञान नही है क्योकि शास्त्र कुछ जाने नही ।
बस इसलिए ही शास्त्र अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

शास्त्र ज्ञान नही है, क्योकि शास्त्र कुछ जानते नही हैं, इसलिए शास्त्र अन्य हैं और ज्ञान अन्य हैं, ऐसा जिनदेव कहते हैं।

---

४२ समयसार, गाथा २००
४३ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा ३५
४४ समयसार, गाथा ३९०

(४५)

सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्द जिणा बेंति ।।

शव्द ज्ञान नही है क्योकि शव्द कुछ जाने नही ।
वस इसलिए ही शव्द अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

शव्द ज्ञान नही है, क्योंकि शव्द कुछ जानते नही हैं, इसलिए शव्द अन्य हैं। और ज्ञान अन्य हैं— ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(४६)

रूवं णाणं ण हवदि जम्हा रूवं ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा बेंति ।।

रूप ज्ञान नही है क्योकि रूप कुछ जाने नही ।
वस इसलिए ही रूप अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

रूप ज्ञान नही है, क्योकि रूप कुछ जानता नही हे, इसलिए रूप अन्य हे और ज्ञान अन्य है – ऐसा जिनदेव कहते हें।

(४७)

वण्णो णाणं ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्ण जिणा बेंति ।।

वर्ण ज्ञान नही है क्योंकि वर्ण कुछ जाने नही ।
वस इसलिए ही वर्ण अन्य रु ज्ञान ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

वर्ण ज्ञान नही है, क्योंकि वर्ण कुछ जानता नही है, इसलिए वर्ण अन्य हैं और ज्ञान अन्य है,–ऐसा जिनदेव कहते हैं।

---

४५ समयसार गाथा ३९१
४६ समयसार, गाथा ३९२
४७ समयसार, गाथा ३९३

(४८)

गंधो णाणं ण हवदि जम्हा गंधो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा बेंति ।।

गध ज्ञान नही है क्योकि गध कुछ जाने नही ।
बस इसलिए ही गध अन्य रु ज्ञान ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

गध ज्ञान नही है, क्योकि गध कुछ जानती नही है, इसलिए गध अन्य है और ज्ञान अन्य है, .– ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(४९)

ण रसो दु हवदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं रसं च अण्णं जिणा बेंति ।।

रस नही है ज्ञान क्योकि कुछ भी रस जाने नही ।
बस इसलिए ही अन्य रस अरु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

रस ज्ञान नही है, क्योकि रस कुछ जानता नही है, इसलिए रस अन्य है और ज्ञान अन्य है,– ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(५०)

फासो ण हवदि णाणं जम्हा फासो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा बेंति ।।

स्पर्श ज्ञान नही है क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नही ।
बस इसलिए स्पर्श अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

स्पर्श ज्ञान नही है, क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नही है, इसलिए स्पर्श अन्य है और ज्ञान अन्य है,– ऐसा जिनदेव कहते हैं।

---

४८ समयसार, गाथा ३९४   ४९ समयसार, गाथा ३९५
५० समयसार, गाथा ३९६

(५१)

कम्मं णाणं ण हवदि जम्हा कम्मं ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा बेंति ।।

कर्म ज्ञान नही है क्योकि कर्म कुछ जाने नही ।
वस इसलिए ही कर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

कर्म ज्ञान नही है, क्योंकि कर्म कुछ जानता नही है, इसलिए कर्म अन्य है और ज्ञान अन्य है,— ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(५२)

धम्मो णाणं ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा बेंति ।।

धर्म ज्ञान नही है क्योंकि धर्म कुछ जाने नही ।
वस इसलिए ही धर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

धर्म (धर्मद्रव्य) ज्ञान नही है, क्योंकि धर्म कुछ जानता नहीं है, इसलिए धर्म अन्य है और ज्ञान अन्य है,— ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(५३)

णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाधम्मो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा बेंति ।।

अधर्म ज्ञान नही है क्योकि अधर्म कुछ जाने नही ।
वस इसलिए ही अधर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

अधर्म (अधर्मद्रव्य) ज्ञान नही है, क्योंकि अधर्म कुछ जानता नहीं है, इसलिए अधर्म अन्य है और ज्ञान अन्य है,— ऐसा जिनदेव कहते हैं।

---

५१ समयसार गाथा ३९७
५२ समयसार गाथा ३९८
५३ समयसार गाथा ३९९

(५४)

कालो णाणं ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा बेंति ।।

काल ज्ञान नही है क्योकि काल कुछ जाने नही ।
बस इसलिए ही काल अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

काल (कालद्रव्य) ज्ञान नही है, क्योंकि काल कुछ जानता नही है, इसलिए काल अन्य है और ज्ञान अन्य है,– ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(५५)

आयासं पि ण णाणं जम्हायासं ण याणदे किंचि ।
तम्हायासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा बेंति ।।

आकाश ज्ञान नही है क्योंकि आकाश कुछ जाने नही ।
बस इसलिए आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

आकाश ज्ञान नही है, क्योंकि आकाश कुछ जानता नही है, इसलिए आकाश अन्य है और ज्ञान अन्य है,– ऐसा जिनदेव कहते हैं।

(५६)

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा ।
तम्हा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ।।

अध्यवसान ज्ञान नही है क्योकि वे अचेतन जिन कहे ।
इसलिए अध्यवसान अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहे ।।

अध्यवसान ज्ञान नही है, क्योकि अध्यवसान अचेतन है, इसलिए अध्यवसान अन्य है और ज्ञान अन्य है।

---

५४ समयसार, गाथा ४००
५५ समयसार, गाथा ४०४
५६ समयसार, गाथा ४०१

(५७)

जम्हा जाणदि णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ।।

नित्य जाने जीव बस इसलिए ज्ञायकभाव है ।
है ज्ञान अव्यतिरिक्त ज्ञायकभाव से यह जानना ।।

चूँकि जीव निरन्तर जानता है, अत यह ज्ञायक आत्मा ज्ञानी है और ज्ञान ज्ञायक से अव्यतिरिक्त है, अभिन्न है,– ऐसा जानना चाहिए।

(५८)

णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ।।

ज्ञान ही समदृष्टि सयम सूत्र पूर्वगताग भी ।
सद्धर्म और अधर्म दीक्षा ज्ञान हैं – यह बुध कहे ।।

ज्ञानीजन ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि (सम्यग्दर्शन) ज्ञान को ही सयम, ज्ञान को ही अगपूर्वगत सूत्र एव ज्ञान को ही धर्म-अधर्म तथा दीक्षा मानते हैं।

(५९)

णाणगुणेण विहीणा एदं तु पदं बहु वि ण लहते ।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ।।

इस ज्ञानगुण के विना जन प्राप्ती न शिवपद की करे ।
यदि चाहते हो मुक्त होना ज्ञान का आश्रय करो ।।

ज्ञानगुण से रहित जन अनेक प्रकार के कर्मों के करते हुए भी इस ज्ञानस्वरूप पद को प्राप्त नहीं करते। इसलिए हे भव्यजन! यदि तुम कर्मों से सर्वथा मुक्ति चाहते हो तो नियत इस ज्ञान गुण को ही ग्रहण करो।

---

५७ समयसार, गाथा ४०२ ५८ समयसार, गाथा ४०३
५९ समयसार, गाथा २०५

(६०)

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ।।

इस ज्ञान मे ही रत रहो सन्तुष्ट नित इसमे रहो ।
बस तृप्त भी इसमे रहो तो परमसुख को प्राप्त हो ।।

हे भव्यजन! तुम इस ज्ञान मे रत रहो, इसमे ही नित्य सन्तुष्ट रहो और इसमे ही तृप्त रहो, तुम्हे उत्तम सुख की अवश्य प्राप्ति होगी।

(६१)

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ।।

परमार्थ है है ज्ञानमय है समय शुध मुनि केवली ।
इसमे रहे थिर अचल जो निर्वाण पावे वे मुनी ।।

निश्चय से जो परमार्थ है, समय है, शुद्ध है, केवली है, मुनि है, ज्ञानी है, उस आत्मा के स्वभाव मे स्थित मुनि ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

(६२)

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्त च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ।।

निज आतमा ही ज्ञान है दर्शन चरित भी आतमा ।
अर योग सवर और प्रत्याख्यान भी है आतमा ।।

निश्चय से मेरा आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन और चारित्र है, मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरा आत्मा ही सवर और योग है।

---

६० समयसार, गाथा २०६
६२ समयसार, गाथा २७७
६१ समयसार गाथा १५१

(६३)

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ।।

निर्ग्रंथ है नीराग है निशल्य है निर्दोष है ।
निर्मान-मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है ।।

भगवान आत्मा परिग्रह मे रहित है, राग मे रहित है, माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यो मे रहित है, सर्व दोषो मे मुक्त हे, काम-क्रोध रहित है ओर मद-मान से भी रहित है।

(६४)

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो ।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ।।

निर्दण्ड हे निर्द्वन्द्व हैं यह निरालम्बी आतमा ।
निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा ।।

भगवान आत्मा हिंसादि पापो रूप दण्ड से रहित है, मानसिक द्वन्द्वो से रहित है, ममत्व परिणाम मे रहित हे, शरीर मे रहित हे, आलम्वन मे रहित है, राग मे रहित हे, द्वेष मे रहित है, मूढता और भय मे भी रहित है।

(६५)

केवलणाणसहावो केवलदसणसहावसुहमइओ ।
केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चितए णाणी ।।

ज्ञानी विचारे इसतरह यह चिन्तवन उनका सदा ।
केवल्यदर्शनज्ञानसुखशक्तिस्वभावी हूँ सदा ।।

ज्ञानी ऐसा चिन्तवन करते हैं कि मैं तो वह हूँ, जो केवलज्ञानस्वभावी है, केवलदर्शनस्वभावी है, सुखमय और केवलशक्तिस्वभावी है।

---

६३ नियमसार, गाथा ४८ — ६४ नियमसार गाथा ४३
६५ नियमसार, गाथा ९६

(६६)

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी ।।

ज्ञानी विचारे देखे-जाने जो सभी को मैं वही ।
जो ना ग्रहे परभाव को निजभाव को छोडे नही ।।

ज्ञानी ऐसा चिन्तवन करते हैं कि मैं तो वह हूँ, जो निजभाव को कभी छोडता नही है, परभाव को ग्रहण नही करता है और सबको जानता-देखता है।

(६७)

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति ।
जरमरणजम्ममुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण ।।

गुण आठ से हैं अलकृत अर जन्म मरण जरा नही ।
हैं सिद्ध जैसे जीव त्यो भवलीन ससारी वही ।।

जिसप्रकार सिद्ध भगवान जन्म-जरा-मृत्यु से रहित और आठ गुणो से अलकृत हैं, उसीप्रकार भवलीन ससारी जीव भी जन्म-जरा-मृत्यु से रहित एव आठ गुणो से अलकृत हैं।

(६८)

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा ।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया ।।

शुद्ध अविनाशी अतीन्द्रिय अदेह निर्मल सिद्ध ज्यो ।
लोकाग्र मे जैसे विराजे जीव हैं भवलीन त्यो ।।

जिसप्रकार लोकाग्र मे सिद्धभगवान अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा रूप से विराजमान हैं, उसीप्रकार सभी ससारी जीवो को भी अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय निर्मल एव विशुद्धात्मा जानना चाहिए।

---

६६ नियमसार, गाथा ९७
६७ नियमसार, गाथा ४७
६८ नियमसार, गाथा ४८

(६९)

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिद ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं।।

कर्म से आवद्ध जिय यह कथन है व्यवहार का ।
पर कर्म से ना वद्ध जिय यह कथन है परमार्थ का।।

कर्म जीव से जीव कर्मों से वधा हुआ है, स्पर्शित है,—यह व्यवहारनय का कथन है और कर्म जीव से या जीव कर्मों से जीव अवद्ध है, अस्पर्शित है.—यह शुद्धनय का कथन है।

(७०)

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्ख ।
पक्खादिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो।।

अवद्ध है या वद्ध है जिय यह सभी नयपक्ष हैं ।
नयपक्ष से अतिक्रान्त जो वह ही समय का सार है।।

जीव कर्मों से वद्ध है या अवद्ध हे—यह तो नयपक्ष है, किन्तु जो नयपक्ष से अतिक्रान्त है, वह समयमार हैं।

(७१)

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाइ विभत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो।।

जिस भाँति प्रज्ञा छैनि से पर से विभक्त किया इसे ।
उस भाँति प्रज्ञा छैनि से ही अरे ग्रहण करो इसे।।

प्रश्न—भगवान आत्मा को किसप्रकार ग्रहण किया जाय ?

उत्तर—भगवान आत्मा का ग्रहण वुद्धिरूपी छैनी से किया जाना चाहिए। जिसप्रकार वुद्धिरूपी छैनी से भगवान आत्मा को पर पदार्थों से भिन्न किया है उसीप्रकार वुद्धिरूपी छैनी से ही भगवान आत्मा को ग्रहण करना चाहिए।

---

६९ समयसार गाथा १४१   ७० समयसार गाथा १४२
७१ समयसार गाथा २९६

(७२)

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा ।।

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो चेतना ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नही यह जानना ।।

प्रज्ञा (बुद्धि) से इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि निश्चय से मैं चेतनास्वरूप हूँ चेतनेवाला हूँ,। शेष जो भाव हैं, वे मुझसे भिन्न हैं, पर हैं,–ऐसा जानना चाहिए।

(७३)

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।।

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो देखता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नही यह जानना ।।

प्रज्ञा से इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि निश्चय से मैं देखनेवाला हूँ, दृष्टा हूँ। शेष जो भाव हैं, वे मुझे से भिन्न हैं, पर है,– ऐसा जानना चाहिए।

(७४)

पण्णाए धित्व्यो जो णादा सो अह तु णिच्छयदो ।
अवसेसा से भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ।।

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो जानता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नही यह जानना ।।

प्रज्ञा से इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि निश्चय से मैं जाननेवाला हूँ, ज्ञाता हूँ। शेष जो भाव हैं, वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानना चाहिए।

---

७२ समयसार, गाथा २९७
७३ समयसार, गाथा २९८
७४ समयसार, गाथा २९९

(७५)

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ।।

जो सो रहा व्यवहार मे वह जागता निज कार्य मे ।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य मे ।।

जो योगी व्यवहार मे सोता है, वह अपने स्वरूप की साधना के काम मे जागता हे और जो व्यवहार मे जागता है, वह अपने काम मे सोता हे।

स्वरूप की साधना ही निश्चय से आत्मा का कार्य है। अत साधुजन व्यर्थ के व्यवहार में न उलझकर एक मात्र अपने आत्मा की ही साधना करते हैं।

(७६)

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ।।

व्यवहार से यह आत्मा घट पट रथादिक द्रव्य का ।।
इन्द्रियो का कर्म का नोकर्म का कर्त्ता कहा ।।

व्यवहारनय से यह आत्मा घट-पट-रथ आदि वस्तुओ को, इन्द्रियो को, अनेक प्रकार के क्रोधादि द्रव्यकर्मों को ओर शरीरादि नोकर्मो को करता है।

(७७)

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेंसि हवदि कत्ता ।।

परद्रव्यमय हो जाय यदि परद्रव्य मे कुछ भी करे ।।
परद्रव्यमय होता नही बस इसलिए कर्ता नही ।।

यदि आत्मा परद्रव्यो को करे तो नियम से तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय हो जावे किन्तु आत्मा तन्मय नहीं है, परद्रव्यमय नहीं है, अत वह उनका कर्ता भी नहीं है।

---

७५ अष्टपाहुड मोक्षपाहुड, गाथा ३१ ७६ समयसार, गाथा ९८
७७ समयसार गाथा ९९

(७८)

जीवो ण करेदि घड णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ।।

ना घट करे ना पट करे ना अन्य द्रव्यो को करे ।
कर्ता कहा तत्रूपपरिणत योग अर उपयोग का ।।

जीव घट को नही करता, पट को नही करता, शेष अन्य द्रव्यो को भी नही करता, परन्तु जीव के योग और उपयोग अवश्य घटादिक की उत्पत्ति में नेमित्त है, उन योग और उपयोग का कर्ता जीव होता है।

(७९)

जे पोग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ।।

ज्ञानावरण आदिक जु पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ।
उनको करे ना आतमा जो जानते वे ज्ञानि हैं ।।

ज्ञानावरणादि कर्म जो कि पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं, उन्हे जो आत्मा नही करता है, परन्तु जानता है, वह आत्मा ज्ञानी है।

(८०)

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ।।

निजकृत शुभाशुभ का कर्ता कहा है आतमा ।
वे भाव उसके कर्म हैं वेदक है उनका आतमा ।।

आत्मा जिन शुभाशुभ भावो को करता है, वह उन शुभाशुभ भावो का कर्ता होता है और वे शुभाशुभ भाव उसके कर्म होते हैं। वह आत्मा उन भावो का भोक्ता भी होता है।

---

७८ समयसार, गाथा १०० ७९ समयसार, गाथा १०१
८० समयसार, गाथा १०२

(८१)

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण सकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ।।

जव सक्रमण ना करे कोई द्रव्य पर गुण द्रव्य मे।
तव करे कैसे परिणमन इक द्रव्य परगुण द्रव्य मे ।।

जो वम्तु जिस द्रव्य और जिस गुण मे वर्तती है, वह वस्तु अन्य द्रव्य तथा गुण मे मक्रमित नही होती। अन्य रूप मे सक्रमित न होती हुई वह वस्तु अन्य वस्तु को परिणमन कैसे करा सकती हे?

(८२)

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
त उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता।

कुछ भी करे ना जीव पुद्गल कर्म के गुण द्रव्य मे ।
जव उभय का कर्ता नही तव किस तरह कर्ता करे? ।।

यह आत्मा पुद्गलमय कर्म के द्रव्य और गुणों को नही करता। उन दोनो को न करता हुआ वह पुद्गलकर्म का कर्ता कैसे हो सकता है?

(८३)

जीवम्हि हेदुभूदे वंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण।।

वध का जो हेतु उम परिणाम को लख जीव मे ।
करम कीने जीव ने वस कह दिया उपचार से।।

जीव के निमित्तभूत होने पर कर्मवध का परिणाम होता हुआ देखकर जीव ने कर्म किए—इमप्रकार उपचार मात्र मे कह दिया जाता है।

---

८१ ममयमार, गाथा १०३ ८२ ममयमार, गाथा १०४
८३ ममयमार, गाथा १०५

(८४)

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो ।
ववहारेण तह कद णाणावरणादि जीवेण।।

रण मे लडे भट पर कहे जग युद्ध राजा ने किया ।
बस उसतरह द्रवकर्म आतम ने किए व्यवहार से।।

जिसप्रकार युद्ध योद्धाओ द्वारा किये जाने पर भी 'युद्ध राजा ने किया'— इसप्रकार व्यवहार से कह दिया जाता है, उसीप्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीव ने किए—यह व्यवहार से कहा जाता है।

(८५)

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।
आदा पोग्गलदव्वं ववहारणयस्य वत्तव्वं।।

ग्रहे बाँधे परिणमावे करे या पैदा करे ।
पुद्गल दरव को आतमा व्यवहारनय का कथन है।।

यह आत्मा पुद्गलद्रव्य को उत्पन्न करता है, बाधता है, परिणमाता है और ग्रहण करता है,—यह सब व्यवहारनय का कथन है।

(८६)

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो।।

गुण-दोष उत्पादक कहा ज्यो भूप को व्यवहार से ।
त्यो जीव पुद्गल द्रव्य का कर्ता कहा व्यवहार से।।

जिसप्रकार व्यवहार से राजा को प्रजा के गुणों और दोषों का उत्पादक कहा जाता है, उसीप्रकार जीव को पुद्गल द्रव्य के द्रव्य और गुणों का उत्पादक व्यवहार से कहा गया है।

---

८४ समयसार, गाथा १०६
८५ समयसार, गाथा १०७
८६ समयसार, गाथा १०८

(८७)

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ।।

जो भाव आतम करे वह उस कर्म का कर्त्ता बने ।
ज्ञानियो के ज्ञानमय अज्ञानि के अज्ञानमय ।।

आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावरूप कर्म का कर्त्ता होता है। इसप्रकार ज्ञानी ज्ञानमय भावों का और अज्ञानी अज्ञानमय भावो का कर्ता होता है।

(८८)

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ।।

ज्ञानमय परिणाम से परिणाम हो सब ज्ञानमय ।
बस इसलिए सद्ज्ञानियो के भाव हो सद्ज्ञानमय ।।

चूकि ज्ञानमय भावो मे से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होते हैं, इसलिए ज्ञानियो के समस्त भाव ज्ञानमय ही होते हैं।

(८९)

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ।।

अज्ञानमय परिणाम से परिणाम हो अज्ञानमय ।
बस इसलिए अज्ञानियो के भाव हो अज्ञानमय ।।

अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए अज्ञानियों के समस्त भाव अज्ञानमय ही होते हैं।

---

८७ समयसार, गाथा १२६
८८ समयसार, गाथा १२८
८९ समयसार, गाथा १२९

(९०)

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं।।

हे भव्यजन! तुम जान लो परमार्थ से यह आतमा ।
निजभाव को करता तथा निजभाव को ही भोगता ।।

निश्चयनय का यह मत है कि आत्मा अपने को ही करता है और अपने को ही भोगता है,— ऐसा जानो।

(९१)

तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गेण्हदे किंचि ।
णेव विमुंचदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं।।

इसलिए यह शुद्धातमा परजीव और अजीव से ।
कुछ भी ग्रहण करता नही कुछ भी नही है छोडता ।।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह शुद्धात्मा जीव और अजीव परद्रव्यों मे से कुछ भी ग्रहण नही करता और न उन्हें छोडता ही है।

(९२)

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं।।

चतुर्गति से मुक्त हो यदि चाहते हो सुख सदा ।
तो करो निर्मलभाव से निज आतमा की भावना ।।

यदि चतुर्गति परिभ्रमण से छूटकर शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हो तो सुविशुद्ध निर्मल भगवान आत्मा की शुद्ध भाव से भावना करो।

---

९० समयसार, गाथा ८३
९१ समयसार, गाथा ४०७
९२ अष्टपाहुड भावपाहुड, गाथा ६०

(९३)

आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं ।
थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण ।।

स्वानुभूती गम्य है जो नियत थिर निजभाव ही ।
अपद पद सब छोड ग्रह वह एक नित्यस्वभाव ही ।।

हे आत्मन! अपदभूत द्रव्यभावो को छोडकर स्थिर, नियत, एक निजभाव को जैसा का तैसा ग्रहण कर।

(९४)

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो ।।

ज्ञायकस्वभावी चेतनामय जीव जिनवर ने कहा ।
जानना उस जीव को ही कर्म क्षय का हेतु भी ।।

जिनेन्द्र भगवान ने जीव का स्वरूप ज्ञानस्वभावी एव चेतनासहित कहा है। यही ज्ञानस्वभावी चेतन आत्मा कर्म क्षय का कारण है।

(९५)

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो ।
संसारतरणहेदू धम्मो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ।।

रागादि विरहित आतमा रत आत्मा ही धर्म है ।
भव तरणतारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है ।।

रागादि सम्पूर्ण दोषो से रहित आत्मा मे आत्मा का रत होना ही संसार से पार करनेवाला धर्म है—ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

---

९३ समयसार गाथा २०३ ९४ अष्टपाहुड भावपाहुड गाथा ६०
९५ अष्टपाहुड भावपाहुड गाथा ८५

(९६)

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ।।

ज्ञान-दर्शनमय निजातम को सदा जो ध्यावते ।
अत्यल्पकाल स्वकाल मे वे सर्व कर्म विमुक्त हो ।।

आत्मा का ध्यान करता हुआ वह आत्मा दर्शन-ज्ञानमय और अपने से ।नन्यमय होता हुआ अल्पकाल मे ही कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त करता ।

(९७)

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ।।

पर का नही न मेरे पर मैं एक ही ज्ञानात्मा ।
जो ध्यान मे इस भाँति ध्यावे है वही शुद्धात्मा ।।

मैं पर का नही हूँ, पर मेरे नही हैं, मैं तो एक ज्ञानमात्र हूँ, इसप्रकार जो ध्यान करता है, वह ध्याता ध्यानकाल मे आत्मा होता है।

(९८)

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिदियमहत्थं ।
धुवमचलमणालंब मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं ।।

इस तरह मैं आतमा को ज्ञानमय दर्शनमयी।
ध्रुव अचल अवलबन रहित इन्द्रियरहित शुध मानता।।

इसप्रकार मैं अपने आत्मा को ज्ञानात्मक, दर्शनभूत, अतीन्द्रिय महापदार्थ, ध्रुव, अचल, निरालब और शुद्ध मानता हूँ।

---

९६ प्रवचनसार, गाथा १८९
९७ प्रवचनसार, गाथा १९१
९८ प्रवचनसार गाथा १९२

(९९)

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाध सत्तुमित्तजणा ।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा ।।

अरि-मित्रजन धन-धान्य सुख-दुख देह कुछ भी ध्रुव नही ।
इस जीव के ध्रुव एक ही उपयोगमय यह आतमा ।।

शरीर, धन, सुख-दुख अथवा शत्रु-मित्रजन जीव के ये सभी सयोग ध्रुव नहीं है अर्थात् सदा के साथी नहीं है, अस्थिर हैं, विनाशीक हैं, अविनाशी ध्रुव तो एक उपयोगात्मक आत्मा ही है।

(१००)

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा ।
सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं ।।

यह जान जो शुद्धात्मा ध्यावे सदा परमातमा ।
दुठ मोह की दुर्ग्रन्थि का भेदन करे वे आतमा ।।

जो ऐसा जानकर विशुद्धात्मा होता हुआ परम आत्मा का ध्यान करता है, वह साकार हो या अनकार मोह दुर्ग्रन्थि का क्षय करता है।

(१०१)

एवं जिणा जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा ।
जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स ।।

निर्वाण पाया इसी मग से श्रमण जिन जिनदेव ने ।
निर्वाण अर निर्वाण मग को नमन वारंवार हो ।।

जिन, जिनेन्द्र और श्रमणजन इसी मार्ग से सिद्ध दशा को प्राप्त हुए हैं, उन निर्वाणगत सिद्धों को एवं उस निर्वाणमार्ग को बारंबार नमस्कार हो।

---

९९. प्रवचनसार, गाथा १९३

१०० प्रवचनसार गाथा १९४

१०१ प्रवचनसार, गाथा १९९